Bodhi-Path Year 2022 January Issue Volume 22 Page No 39-47

बौद्ध परम्परा में वर्णित गृहस्थ धर्म

डॉ संघमित्रा बौद्ध

बौद्ध अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालये

दिल्ली–110007

बौद्ध धर्म श्रमण परम्परा का एक निवृतिमार्गी धर्म है जिसके प्रवर्तक भगवान् बुद्ध हैं। वैदिक परम्परा में जहाँ पुरुषार्थ चतुष्टय–धर्म, अर्थ, काम, एवं मोह को महत्व प्राप्त है तथा वर्णाश्रम व्यवस्था है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ सन्यास के लिए आयु निर्धारित है। बौद्ध परम्परा में इस तरह की व्यवस्था न पाए जाने से निवृत्ति प्रधान कहा जाता है। निर्वाण को परम लक्ष्य मानकर आचरण हेतु संहिता बनाई गयी। ई. पू. छठी शताब्दी में बुद्ध ने हिंसक यज्ञों का विरोध कर समाज में अहिंसा को प्रतिष्ठा दिलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की, जो भव–व्याधि से पीड़ित मानव के लिए वरदान सिद्ध हुई।

गृहस्थों के लिए प्रतिपादित बौद्ध परम्परा में पंचशील तथा भिक्षु के लिए दस शील पालनीय हैं।

यो पाणातिपातेति मुसावादञ्च भासति।
लोके अदिन्नं आदियति परदारञ्च गच्छति।
सुरामेरयपानञ्च यो नरो अनुयुञ्जति।
इधेवमेसो लोकस्मिं मूलं खनति अत्तनो।[1प]

पंचशील शब्द से पाँच प्रकार के प्रतिष्ठत शिक्षाओं (नियमों) का ज्ञान होता है। इनका वर्णन निम्न प्रकार है :–

1. पाणातिपाता वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

यह प्रथम शील है। जीव हिंसा से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करना। अहिंसा का पालन करना शील सदाचार का पहला नियम है। किसी भी जीव की हत्या करना या उसे किसी प्रकार का कष्ट पहुँचाने को हिंसा कहते हैं। हिंसा का जन्म क्रोध, द्वेष, दुर्भावना जैसे विकार मन में जाग्रत करने से हमारा मन अशांत और व्याकुल हो जाता हैं इस शील का सकारात्मक अंग 'मैत्री' है। जीव हत्या से विरत रहकर मैत्री, मित्रता,

भाईचारा बनाए रखना चाहिए। शील सदाचार का जीवन दूसरों के हित में नहीं बल्कि हमारे स्वयं के हित में भी है।

2. अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

चोरी से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करना। यह शील सदाचार का दूसरा नियम है। बिना पूर्व स्वीकृति के वस्तु को ग्रहण करना चोरी है। चोरी का जन्म लालच, लोभ जैसे विकार मन में जाग्रत करने से होता है। इस शील का सकारात्मक अंग 'दान' है।

3. कामेसुमिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

व्यभिचार से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करना। यह शील सदाचार का तीसरा नियम है। व्यभिचार की उत्पत्ति कामना, इच्छा जैसे विकार मन में जाग्रत करने से होता है। इस शील का सकारत्मक अंग 'संतोष' है। इस शील के पालन से इच्छाओं पर नियन्त्रण से मन सन्तुष्ट रहता है।

4. मुसावादा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

असत्य वचन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करना। यह शील सदाचार का चौथा नियम है। झूठ का जन्म भय, लोभ, अहंकार जैसे विकार मन में जाग्रत करने से होता है। इस शील का सकारात्मक अंग 'सत्यता' है। इस शील के पालन से वाणी सार्थक तथा मधुर हो जाती है।

5. सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

अर्थात् प्रमाद के हेतुभूत सुरा[2],[पप] मेरय[3पपप] आदि मद्यों से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करना। यह शील सदाचार का पांचवा नियम है। इस शील का सकारत्मक अंग 'जागरूक' है।

जो व्यक्ति इनका पालन करता है, उसका आचरण शुद्ध एवं पवित्र माना जाता है। पंचशील का आरम्भ 'पाणातिपाता वेरमणी' से होता है। जिसका तात्पर्य है हिंसा से विरत रहना तथा कर्म व वाणी को संयमित रखना।

पंचशील आचार के नैतिक नियम निर्धारित करते हैं अतः इन्हें शिक्षापद भी कहते हैं, क्योंकि ये गृहस्थमात्र के लिए आचरणीय ठहराये गये हैं, इसलिए इन्हें गृहस्थ शील भी कहते हैं। सामान्यजन के लिए नित्य आचरणीय होने के कारण इनको नित्यशील भी कहते हैं।

भगवान् बुद्ध ने जिस जीवनविधा को लोक में स्थापित किया वह भौतिक तथा कायक्लेश दोनों प्रकार की उपलब्धियों का सन्तुलित मिश्रण है। उसमें उन्होंने कहा कि न तो

लौकिक सुख की ओर अर्थात् इन्द्रिय–सुख की ओर अत्याधिक अभिरूचि होनी चाहिए। जो काम और विषय वासनाओं का जीवन है, जो अत्यन्त हीन अनार्य और अनर्थकर है। दूसरा न ही कायक्लेश में अभिनिवेश होना चाहिए। क्योंकि शरीर को व्यर्थ ही पीड़ा पहुँचाना भी अत्यन्त हीन अनार्य और अनर्थकर है। इन दोनों अन्तों का त्याग कर बुद्ध ने आर्य अष्टांगिक मार्ग को प्रशस्त किया। आर्य अष्टांगिक मार्ग ही मध्यम प्रतिपदा है। यह उच्चतम आध्यात्मिक एवं समाजिक जीवन जीने का मार्ग है। इस मार्ग से पथिकों की दुःखों से मुक्ति होती है। आर्य अष्टांगिक मार्ग का अंतिम उद्देश्य निर्वाण प्राप्ति है। निर्वाण प्राप्त लोग आध्यात्मिक दृष्टि से निष्पक्ष होते हैं। अतः इनके क्रिया कलापों से न तो किसी को कष्ट होता है और न ही वे कर्मबन्धन में फंसते हैं।

बौद्ध परम्परा में परिशुद्ध आजीविका के विभिन्न स्वरूप मिलते हैं। जीवन यापन करने के लिए जीविका मुख्य होती है, जिससे मनुष्य का जीवन व्यवस्थित एवं उत्तक तरीके से व्यतीत हो सके। इसलिए बुद्ध ने सम्यक् आजीविका में प्राणियों का व्यापार, हथियारों का व्यापार, मांस का व्यापार, शराब का व्यापार, विष का व्यापार आदि से अर्जित जीविका को अशुद्ध बतलाया और ऐसी जीविका से विरत रहने का उपदेश दिया। जीविकोपार्जन की विधि और तरीकों से अन्य व्यक्तियों को कोई हानि न हो तथा अपनी आजीविका के साथ–साथ अन्य व्यक्तियों के कल्याण की सम्भावना हो अर्थात् जीविकोपार्जन उन सभी मिथ्या आजीविकाओं से विरत एवं उचित विधि से अर्जित करना ही सम्यक् आजीविका है।

भगवान् बुद्ध ने गृहस्थों को संपत्ति का स्वागत करने के लिए कहा है किन्तु इसके साथ ही यह संपत्ति कुशल मार्ग से तथा श्रमपूर्वक प्राप्त की जानी चाहिए। परिश्रम द्वारा प्रप्त संपत्ति से गृहस्थों को चार कुशल के परिणाम मिलते है। वे इस प्रकार है –

1. अस्तिसुख – स्वबाहूबलवीर्य से परिश्रम कर, धम्माचरण द्वारा संपत्ति प्राप्त करने से 'अस्तिसुख' यह पहला सुख मिलता है। मेरे पास उपभोग की वस्तुऐं हैं ऐसा अनुभव लेना ही 'अस्तिसुख' है।[4पअ]
2. भोगसुख – जो व्यक्ति स्वबाहूबलवीर्य से परिश्रम कर, धम्माचरण द्वारा संपत्ति प्राप्त करता है तथा उस संपत्ति का मैं उपभोग करता हूँ और उसके द्वारा पुण्य कर्म करता हुँ इस अनुभव से जो सुख तथा मानसिक समाधान उसे प्राप्त होता वह 'भोग सुख' है।[5अ]
3. आनृन्यसुख – कोई व्यक्ति किसी से भी धन उधार नहीं लेता उस समय उसको यह सौमनस्य होता है कि मैंने किसी से भी धन ऋण रूप में नहीं लिया ऐसा चिंतन ही 'आनृन्यसुख' है।[6अप]

4. अनवद्यसुख – कोई व्यक्ति काय, वाणी तथा मन के कर्म से निर्दोष होता है उससे उसे 'अनवद्यसुख' मिलता है। ये चार विपाक जिसे प्राप्त होते हैं वही इस संसार में सुखी प्राणी कहलाता है।[7अपप]

संयुक्तनिकाय में गृहस्थों की समस्याओं के समाधान के लिए चार सर्वोच्च धर्म कहे गये है– सत्य, दम, धृति, तथा व्यायाम। इन चारों को गृहस्थों का सर्वोत्तम धर्म कहा गया है। इन चार धर्मों को दूसरे श्रमण और ब्रह्ममण भी मानते थे।[8अपपप]

देवता द्वारा पूछे जाने पर कि संसार में अनेक प्रकार से मार्ग कहे गये हैं फिर भी लोग भयभीत हैं। ऐसा कौन सा स्थान है जहां खड़े होकर प्राणी भय को प्राप्त नहीं होता है ? इसके उत्तर में भगवान् ने चार धर्म बतलाते हैं, जहां पर खड़े होने से परलोक का डर नहीं रहता–

1. मन और वचन को ठीक रास्ते से लगाना।
2. अन्न–पान से भरे घर में रहना।
3. शरीर से पापाचरण नहीं करना।
4. श्रद्धालु एवं मृदु होना तथा बांटेर वस्तुओं का उपभोग करना एवं हिलना–मिलना।[9पग]

बौद्ध परम्परा में गृहस्थों की आचार संहिता होती हैं। जिनका विस्तार से प्रतिपादन पाया जाता है। इसमें गृहस्थों को पूजा के स्थान पर छः विशेष कर्तव्य बतलाए गये हैं। सिंगालावादसुत्त[10ग] में गृहस्थ के अधिकार एवं कर्तव्य का जितना सुन्दर व सरल विवेचन मिलता है अन्यत्र नहीं। यह आदर्श गृहस्थ की ऐसी आचार संहिता कही जा सकती है कि जो किसी जाति, सम्प्रदाय, धर्म पंथ, या राष्ट्र की सीमा से बाधित नहीं होती।

सिंगालोवाद सुत्त में वर्णित है कि एक समय भगवान् बुद्ध रागृह में वेणुवन कलन्द–निवाप में विहार करते थे। उस समय सिंगाल नाम का गृहपति–पुत्र सवेरे ही उठकर, राजगृह से निकलकर, भीगे वस्त्र, भीगे केश, हाथ जोड़े, पूर्व–दिशा, दक्षिण–दिशा, पश्चिम–दिशा, उत्तर–दिशा, नीचे की दिशा, ऊपर की दिशा–नाना दिशाओं को नमस्कार करता था। भगवान् ने उसे ऐसा करते देख, पूछा– "गृहपति–पुत्र! क्या तू रोज सवेरे उठकर इस प्रकार नमस्कार करता है ?" 'भन्ते! मेरे पिता ने मुझसे मरते समय यह कहा था कि इस प्रकार सभी दिशाओं को नमस्कार किया कर। मैं अपने पिता के वचन के प्रति गौरव प्रदर्शित करता हुआ नमस्कार करता हूँ।"

"गृहपति–पुत्र! तू ने अपने पिता के कथन को ठीक तरह से ग्रहण नहीं किया।

माता–पिता को पूर्व–दिशा मानना चाहिए।

आचार्यों को दक्षिण–दिशा मानना चाहिए।

पुत्र–स्त्री को पश्चिम–दिशा मानना चाहिए।

मित्रामात्यों को उत्तर–दिशा मानना चाहिए।

नौकर–चाकरों को नीचे की दिशा मानना चाहिए।

श्रमण–ब्रह्मणों को ऊपर की दिशा मानना चाहिए।

"गृहपति–पुत्र! पाँच तरह से माता–पिता की सेवा करनी चाहिए।

1. इन्हीं ने मेरा भरण–पोषण किया है, अतः मुझे भी इनका भरण–पोषण करना चाहिए।
2. उन्होंने मेरा उपकार किया है, अतः मुझे भी इनका उपकार करना चाहिए।
3. इन्होंने कुल–परम्परा को बनाये रखा है, अतः मुझे भी कुल–परम्परा को बनाये रखना चाहिए।
4. इन्हीं ने मुझे अपनी सम्पत्ति का उत्तराधिकार बनाया है, अतः मुझे भी उत्तराधिकार सौंपना चाहिए।
5. ये श्रद्धापूर्वक दान करते रहते हैं, अतः मुझे भी दान करते रहना चाहिए।

"इन पाँच तरह से सेवित माता–पिता अपनी संतान पर पाँच प्रकार से अनुकम्पा करते हैं–

1. वे अपनी सन्तान को पाप–कर्म से दूर रखते हैं ।
2. वे उसे पुण्य कर्मों में लगाते हैं।
3. वे उसे कशल्प सिखाते हैं।
4. वे योग्य–स्त्री से संबंध करा देते हैं।
5. वे समय आने पर उत्तराधिकार सौंप देते हैं।

"गृहपति–पुत्र! पाँच बातों से शिष्य–द्वारा आचार्य–रूपी दक्षिण–दिशा की सेवा की जानी चाहिए–

1. त्तपर रहना चाहिए।

2. सेवा करनी चाहिए।
3. सुश्रूषा करनी चाहिए।
4. परिचर्या करनी चाहिए।
5. आदरपूर्वक शिल्प सीखनी चाहिए।

"गृहपति–पुत्र! इस प्रकार पाँच बातों से शिष्य द्वारा सेवित आचार्य पाँच प्रकार से शिष्य पर अनुकम्पा करते हैं–

1. सुविनय युक्त करते हैं।
2. सुन्दर शिक्षा को भली प्रकार सिखाते हैं।
3. 'हमारी विद्या परिपूर्ण रहेगी' यह सोच कर सभी शिष्य अपनी विद्याा सिखाते हैं।
4. मित्र–अमात्यों को सु–प्रतिपादन करते हैं।
5. `दिशा की सुरक्षा करते हैं।

"गृहपति–पुत्र! पाँच प्रकार से स्वामि–द्वारा भार्या–रूपी पश्चिम दिशा की सेवा की जानी चाहिए–

1. सम्मान से
2. अपमान न करने से
3. अतिचार (=परस्त्री–गमन) न करने से
4. ऐश्वर्य (=सम्पत्ति) प्रदान करने से
5. अलंकार–प्रदान करने से

"गृहपति–पुत्र! इन पाँच प्रकार से स्वामि–द्वारा सेवित भार्या पाँच प्रकार से स्वामी पर अनुकम्पा करती है।

1. काम–काज भली प्रकार करती है।
2. नौकर–चाकर वश में रहते है।
3. आतिचारिणी नहीं होती।
4. अर्जित धन की रक्षा करती है।
5. सभी कामों में आलस्य–रहित तथा दक्ष होती है।

"गृहपति–पुत्र! पाँच प्रकार से मित्र–आमात्यों रूपी उत्तर–दिशा की सेवर करनी चाहिए–

1. दान से
2. प्रिय–वाणी से
3. काम–काज कर देने से
4. समानता का वयावहार करने से
5. विश्वासी बनने से

"गृहपति–पुत्र! पाँच प्रकार से मालिकों द्वारा नौकर–चाकर रूपी निचली दिशा की देखीभाल की जानी चाहिए–

1. उनकी सामर्थ्य के अनुसार उन से काम लेकर
2. भोजन–वेतन देकर
3. रोग––सुश्रूषा से
4. उत्तम रसों को प्रदान करने से
5. समय पर छुट्टी देने से

"गृहपति–पुत्र! इन पाँच प्रकार से देखभाल किये गये नौकर–चाकर पाँच प्रकार से मालिक की सेवा करते हैं–

1. मालिक से पहले बिस्तर से उठ जाने वाले होते हैं।
2. पीछे सोने वाले होते हैं।
3. जो दिया जाये, वही लेने वाले होते हैं।
4. कामों को अच्छी तरह करने वाले होते हैं।
5. कीर्ति–प्रशंसा फैलानेप्रशंसा फैलाने वाले होते हैं।

"गृहपति–पुत्र! पाँच प्रकार से श्रमण–ब्राह्मण रूपी ऊपर की दिशा की सेवा की जानी चाहिए–

1. मैत्री–भाव युक्त काय–कर्म होना चाहिए।
2. मैत्री–भाव युक्त वाणी–कर्म होना चाहिए।
3. मैत्री–भाव युक्त मन–कर्म होना चाहिए।
4. भिक्षुओं के लिए द्वार खुला रहना चाहिए।

5. भौतिक–वस्तुयें दी जानी चाहिए।

"गृहपति–पुत्र! इस प्रकार सेवित ऊपर की दिशा श्रमण–ब्राह्मण पाँच प्रकार से अनुकम्पा करते हैं–

1. बुराई से बचाते हैं।
2. भलाई में प्रवेश करते हैं।
3. अश्रुत को सुनाते हैं।
4. श्रुत को दृढ़ करते हैं।
5. सुगति–पथ दिखाते हैं।

सुत्तनिपात के धम्मिक सुत्त[11गप] में गृहस्थ के आचरण पर विशेष और विस्तार से भगवान् बुद्ध ने निर्देश दिए हैं। वे उत्तम श्रावक गृहस्थ के आचरणीय धर्मों के विषय में सर्वप्रथम अहिंसा पर बल देते हैं। उन्होंने कहा कि मनुष्य को चाहिए कि वह संसार के समस्त प्राणियों के प्रति हिंसा का परित्याग करके न तो किसी प्राणी की हिंसा करे, न हींसा के लिए किसी को प्रेरित करे और न हिंसा करने के लिए किसी को अनुमति दे। इसी प्रकार दूसरे की वस्तु को अनधिकृतरूपेण ग्रहण करने का विचार मनुष्य न करे, किसी को इस काय्र के लिए प्रंरित भी न करे और अनुमति भी न दें

बुद्ध ने अब्रह्मचर्य को जलते अंगारों से भरे गड्ढे के समान कहा है, इसलिए विज्ञ पुरूष को अब्रह्मचर्य का परित्याग कर देना चाहिए। किसी सभा में न तो स्वयं असत्य भाषण करे, न असत्य बोलने के लिए किसी को प्रेरणा दे और न मिथ्या भाषण की अनुमति ही दे। उनका कहना है कि सद्धर्म के इच्छुक गृहसी लोग मद्यपान और उसके दुष्परिणाम को जानकर न तो स्वयं मद्य का सेवन करे और न दूसरों को कराए तथा न किसी को मद्यपान की अनुमति दे, क्योंकि मद्य के वशीभूत मूर्खजन नाना तरह के पापकर्म करते हैं तथा दूसरों से पाप कर्म करवाते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि परिवार का सुखी जीवन तभी सम्भव है, जब गृहस्थों द्वारा अपने धर्म–कर्त्तव्यों का सही ढंग से आचरण किया जाए।

संदर्भ संकेत

[i] धम्मपद ; मलवग्गो–18, गाथा न॰ 246

[ii] माँड इत्यादि की बनी शराब। सुरा पाँच प्रकार की होती है– पिट्ठसुरा, पूवसुरा, ओदनसुरा, किण्णपक्खित्ता, सम्भार–संयुत्ता (परमत्थजोतिका)।

[iii] फूल,फल इत्यादि की बनी शराब। यह भी पाँच प्रकार की है– पुप्फासवो, फलासवो, गुलासवो, मध्वासवो सम्भारसंयुत्तो (परमत्थजोतिका)।

[iv] अंगुत्तनिकाय, चतुक्कनिपात, आनृन्यसुत्त, पृ. 96, सम्पा. स्वामी द्वाराकादास शास्त्री, बौद्धभारती ग्रन्थमाला–46, वाराणसी, 2009

[v] वही

[vi] वही

[vii] वही

[viii] यस्सेते चतुरो धम्मा, सद्धसस घरमेसिनो।
सच्चं धम्मो धिति चागो, स वे पेच्च न सोचति।। संयुत्तनिकायपालि–1, पृ.217, प्रकाशन, नालन्दा।

[ix] वाचं मनं च पणिधाय सम्मा, कायेन पापानि अकुब्बमानो ।
एतेसु धम्मेसु ठितो चतूसु, धम्मे ठितो परलोकं न भाये" ति।। संयृत्तनिकायपालि–1, पृ. 40

[x] सिंगालोवादसुत्त ; दीघनिकायपालि

[xi] सुत्तनिपात; धम्मिकसुत्त–(2,14), पृ. 95–99